जनसत्ता

दोहरा चरित्र

पाकिस्तान ने भारतीय नागरिक कुलभूषण जाधव को दूसरी बार राजनयिक पहुंच देने से इनकार कर एक बार फिर अपना दोहरा चरित्र दिखाया है। उसका यह व्यवहार बता रहा है कि वह भारत के साथ किसी तरह की शांति नहीं चाहता, बल्कि उसकी दिलचस्पी विवादों को बनाए में है। पाकिस्तान यह भूल रहा है कि जाधव को राजनयिक पहुंच मुहैया कराना उसकी जिम्मेदारी है और उसे यह आदेश अंतरराष्ट्रीय न्यायालय ने दिया है। जाधव को राजनयिक पहुंच नहीं देकर वह अंतरराष्ट्रीय न्यायालय को ठेंगा दिखा रहा है। दो सितंबर को पाकिस्तान ने पहली बार भारतीय उच्चायोग के प्रभारी उप उच्चायुक्त गौरव आहलूवालिया की जाधव से दो घंटे की मुलाकात करवाई थी। अगर भारतीय उप उच्चायुक्त जाधव से नहीं मिल पाते तो पता ही नहीं चलता कि जाधव किस हाल में हैं। इस मुलाकात से ही यह पता चला कि जाधव मानसिक तनाव और दबाव में थे। वे चाह कर भी हिम्मत नहीं जुटा पा रहे थे कि कुछ हकीकत बयान कर सकें। उन्होंने उस मुलाकात में जो कुछ कहा उससे यह साफ था कि वे वही बोल रहे हैं जो पाकिस्तानी सेना ने उन्हें बोलने को कहा होगा। इन हालात को देखते हुए ही यह जरूरी हो गया है कि जाधव को भारतीय राजनयिक से नियमित रूप से मिलने की इजाजत दी जानी चाहिए।

भारत ने जाधव को नियमित रूप से राजनयिक पहुंच देने की मांग करके कोई अनुचित बात नहीं की है। अंतरराष्ट्रीय अदालत ने साफ कहा है कि पाकिस्तान जाधव की मौत की सजा की समीक्षा करे और वियना संधि के तहत उन तक राजनयिक पहुंच सुनिश्चित कराए। अंतरराष्ट्रीय अदालत ने ऐसा कहीं नहीं कहा कि एक बार ही राजनयिक पहुंच दी जाएगी। लेकिन पाकिस्तान अब अंतरराष्ट्रीय अदालत के फैसले को धता बताते हुए अपनी मनमानी कर रहा है। राजनयिक संबंधों को लेकर वियना संधि के अनुच्छेद 36(1)(बी) में साफ कहा गया है कि अगर किसी एक देश के नागरिक को किसी दूसरे देश में गिरफ्तार किया जाता है तो दूसरे देश को बिना देरी किए पहले देश को जानकारी देनी होगी। इसी तरह इस संधि के अनुच्छेद 36(1)(सी) में कहा गया है कि पहले देश के अधिकारियों को उस देश में यात्रा करने का अधिकार है जिस देश में उसके नागरिक को गिरफ्तार या हिरासत में लिया गया है। इसमें गिरफ्तार व्यक्ति को कानूनी सहायता देने का भी प्रावधान है। लेकिन पाकिस्तान ने अपनी दादागीरी दिखाते हुए वियना संधि को ताक पर रख दिया है।

इन दिनों पाकिस्तान की बौखलाहट इसलिए भी बढ़ी हुई है कि कश्मीर मसले पर उसे दुनिया में कहीं से कोई मदद नहीं मिल रही है। जम्मू-कश्मीर से अनुच्छेद 370 को निष्क्रिय करने के भारत के फैसले को अमेरिका सहित सारे देशों ने इसे भारत का अंदरूनी मामला करार दे दिया है। संयुक्त राष्ट्र में भी पाकिस्तान को मुंह की खानी पड़ी है। पाकिस्तान के गृह मंत्री और विदेश मंत्री तक खुलेआम कह रहे हैं कि कश्मीर पर पाकिस्तान को किसी का साथ नहीं मिल रहा। इसीलिए पाकिस्तान जाधव की आड़ में अपनी खीझ निकाल रहा है। एक तरफ तो वह भारत से शांति, भाईचारे, इंसानियत की उम्मीदें रखता है मगर दूसरी ओर जाधव मामले में वह खुद कितनी अमानवीयता बरत रहा है, यह उसे नजर नहीं आ रहा। इंसानियत तो यह होती कि जाधव को बिना बाधा राजनयिक पहुंच दी जाती। जाधव कहीं भाग नहीं रहे हैं। भारत ने उनके लिए कोई विशेष सुविधाएं भी नहीं मांगी। बात सिर्फ अंतरराष्ट्रीय अदालत के फैसले पर ईमानदारी से अमल की है। बेहतर होता जाधव मामले में पाकिस्तान समझ-बूझ से काम लेता। इससे दोनों देशों के बीच विश्वास का पुल तो बनता।

उच्च शिक्षा की तस्वीर

किसी भी देश की उच्च शिक्षा की तस्वीर यह बताती है कि वहां की सरकार की प्राथमिकता में शिक्षा की जगह क्या है और वह इससे कितना सरोकार रखती है। पिछले कई सालों से लगातार जब भी दुनिया भर में बेहतर गुणवत्ता वाले विश्वविद्यालयों की सूची सामने आई है, उसमें शीर्ष दो या ढाई सौ तक की संख्या में हमारे देश के किसी भी उच्च शैक्षिक संस्थान को जगह नहीं मिली। इस तरह की सूची सामने आने का एक हासिल यह होना चाहिए कि सरकार और समूची व्यवस्था इस मामले में सुधार के लिए ठोस पहलकदमी करे, ताकि इस स्थिति में कुछ सुधार हो। लेकिन अफसोस की बात यह है कि हर अगले साल इस मामले में भारत की तस्वीर और चिंताजनक होती गई है। कुछ साल पहले जहां विश्व भर में शीर्ष दो सौ विश्वविद्यालयों में भारत के किसी भी संस्थान को जगह नहीं मिल सकी थी, अब उसमें और ज्यादा गिरावट आ चुकी है। पिछले साल के आखिर में ढाई सौ और अब ताजा अध्ययन में तीन सौ विश्वविद्यालयों में भी हमारे देश का एक भी उच्च शिक्षा संस्थान अपनी जगह नहीं बना सका ।

साफ है कि उच्च शिक्षा के क्षेत्र में समस्या और उसके कारण स्पष्ट होने के बावजूद उसके हल के लिए कुछ भी ऐसा नहीं हो रहा है, जिससे भविष्य के लिए कोई उम्मीद बंध सके। सवाल है कि सरकारों की ओर से किए जाने वाले लगातार दावों के बावजूद आखिर इस मामले में तस्वीर और क्यों बिगड़ती जा रही है! आंकड़ों में विकास का पैमाना नापते हुए क्या यह ध्यान रखना जरूरी नहीं समझा जाता कि अगर सबसे अहम उच्च शिक्षा का क्षेत्र उपेक्षित रह जाता है, तो उस विकास की बुनियाद कितनी मजबूत होगी? लंबे समय से यह सवाल बना हुआ है कि शिक्षण के मामले में दयनीय हालत की सबसे बड़ी वजह शिक्षकों की भारी कमी है। कुछ अन्य कारणों के अलावा सिर्फ इस वजह से पढ़ाई-लिखाई की गुणवत्ता बुरी तरह प्रभावित हो रही है, लेकिन इसके हल की कोशिशें केंद्र में नहीं आ पा रही हैं। थोड़ी बेहतर स्थिति इंडियन इंस्टीट्यूट ऑफ टेक्नोलॉजी जैसे कुछ संस्थानों की मानी जाती है। लेकिन इससे इतर देश भर के विश्वविद्यालयों में शिक्षकों के खाली पदों की संख्या इतनी ज्यादा है कि इसके रहते बेहतर शिक्षण और शैक्षणिक गतिविधियों की उम्मीद बेमानी है।

यों शैक्षणिक और गैर-शैक्षणिक पदों पर नियुक्तियां करने से लेकर दूसरे मामलों में विश्वविद्यालयों को स्वायत्तता हासिल है। लेकिन हाल के वर्षों में जब भी शिक्षकों की नियमित भर्ती का सवाल उठा तो धन की कमी सबसे मुख्य अड़चन बन कर सामने आई। दूसरे क्षेत्रों में धन के बेलगाम प्रवाह के बरक्स उच्च शिक्षा के मामले में धन की कमी कहां और किसकी ओर से पैदा हो रही है? यह किसी से छिपा नहीं है कि उच्च शिक्षा और उसके सहारे रोजगार के बीच बढ़ती खाई की वजह से हमारी शिक्षा व्यवस्था नए 'ग्रेजुएट' तो पैदा कर रही है, लेकिन रोजगार उपलब्ध कराने की दिशा में पूरी तरह नाकाम साबित हुई है। उच्च शिक्षण संस्थानों में शिक्षण और शोध के मामले में जिस तरह की औपचारिकताएं पूरी की जा रही हैं, उनके रहते शैक्षणिक गुणवत्ता की किन कसौटियों को पूरा किया जा सकेगा? गौरतलब है कि संख्या के लिहाज से भारत की उच्चतर शिक्षा व्यवस्था अमेरिका और चीन के बाद तीसरे नंबर पर आती है, लेकिन गुणवत्ता के मामले में इसे दुनिया के शीर्ष तीन सौ विश्वविद्यालयों में भी जगह नहीं मिल पा रही है। यह समूचे देश के लिए चिंता की बात होनी चाहिए।

कल्पमेधा

कोई वस्तु अच्छी या बुरी नहीं है। अच्छाई और बुराई का आधार हमारे विचार ही हैं।
-शेक्सपीयर

आपदाएं और बचाव की चुनौती

भारत डोगरा

पर्वतीय क्षेत्रों में भूस्खलन की एक बड़ी वजह तो यह है कि विभिन्न निर्माण कार्यों, विशेषकर बांध निर्माण और खनन के लिए विस्फोटकों का अंधाधुंध उपयोग किया जाता है। इसको नियंत्रित और नियमित करना जरूरी है। वन-विनाश भी भूस्खलन की आशंका बढ़ने का एक अन्य बड़ा कारण रहा है। भूस्खलन अपने आप में बड़ी आपदा तो है ही, इससे बाढ़ भी उग्र रूप धारण कर लेती है।

चाहे बाढ़ हो या सूखा, समुद्री तूफान हो या भूस्खलन की बढ़ती घटनाएं, गर्मी का बढ़ता प्रकोप हो या फिर वनों में लगी आग- इन सभी तरह की आपदाओं की पिछले कुछ दशकों में बिगड़ती स्थिति देखी गई है। ये आपदाएं अब भयानक रूप लेती जा रही हैं। यह स्थिति देश और दुनिया दोनों स्तरों पर नजर आ रही है। जहां कुछ आपदाओं की इस बिगड़ती स्थिति में जलवायु बदलाव की एक बड़ी भूमिका है, वहीं दूसरी ओर स्थानीय कुप्रबंधन, अनुचित निर्णयों और नीतियों के कारण स्थिति और उग्र हो जाती है।

केरल राज्य को लगातार दो वर्ष बाढ़ व भूस्खलन का अत्यधिक प्रकोप झेलना पड़ा है। यहां कुछ हद तक जलवायु बदलाव की भूमिका नजर आती है, तो स्थानीय कुप्रबंधन ने भी स्थिति को और बिगाड़ा है। विशेषकर अंधाधुंध निर्माण और जल-निकासी के प्राकृतिक मार्ग की अवहेलना की महंगी कीमत यहां चुकानी पड़ी है। केरल के मुख्य सचिव ने हाल ही में कहा था कि लाखों आवास खतरे की स्थिति में आ गए हैं और दस से बीस लाख लोगों का पुनर्वास करना बड़ी चुनौती है।

यही स्थिति प्रायः देश और दुनिया के अनेक ऐसे अन्य क्षेत्रों की है जिन्हें बार-बार किसी बड़ी आपदा का सामना करना पड़ा है। जलवायु संकट के दौर में ऐसे क्षेत्रों की विशेष सहायता के लिए अंतरराष्ट्रीय कोष की स्थापना की चर्चा तो बहुत होती रही है, पर इस क्षेत्र में व्यावहारिक उपलब्धि बहुत कम है। इस स्थिति में यह और भी जरूरी हो जाता है कि हम आपदाओं की क्षति को न्यूनतम करने के सतत और व्यापक प्रयास करें।

कुछ क्षेत्रों, विशेषकर दक्षिण एशिया के संदर्भ में अध्ययन बताते हैं कि पिछली लगभग एक शताब्दी के दौरान भूकम्प पहले से अधिक जानलेवा बन गए हैं। सवाल है कि ऐसा क्यों हुआ, जबकि इस दौरान भूकम्प से बचाव वाले भवन बनाने की तकनीक में काफी प्रगति होने के दावे किए गए। 'साइंस' पत्रिका में छपे एक लेख के मुताबिक वर्ष 1900 के बाद आए भूकम्पों में केवल भारत और पाकिस्तान में जितनी मौतें हुई हैं, वे इससे पहले की शताब्दियों में आए भूकम्पों के कारण हुई मौतों के मुकाबले कहीं ज्यादा हैं। भूकम्पों में हुई अधिक मौतों का कारण इस दौर में इन देशों में निर्माण के ऐसे तौर-तरीकों का उपयोग है जो कम मजबूत साबित हुए हैं। हालांकि इसका अर्थ यह नहीं है कि यहां बेहतर तकनीक उपलब्ध नहीं है। वे उपलब्ध तो हैं, पर उनका उपयोग बहुत कम है। कई ठेकेदारों द्वारा निर्माण के नियम-कानूनों की उपेक्षा की जा रही है, जबकि स्वयं आवास बनाने वाले अनेक लोगों के पास जानकारी का भी अभाव है।

भूकम्प-प्रतिरोधी तकनीक का उपयोग सार्वजनिक इमारतों में तो प्रायः हो जाता है, लेकिन आवासीय भवनों में इसका उपयोग प्रायः नहीं होता है। वैज्ञानिकों का कहना है कि जितनी जानकारी अभी उपलब्ध है, यदि केवल इसका उपयोग सुरक्षित निर्माण के लिए किया जाता है तो भविष्य में भूकम्प से होने वाली मानवीय जीवन की क्षति में भारी कमी लाई जा सकती है। दूसरी ओर, यदि निर्माण कार्यों में ऐसा सुधार नहीं किया गया तो भूकम्पीय चेतावनी के अधिक महंगे व खर्चीले उपाय भी मानवीय जीवन बचाने में कारगर सिद्ध नहीं होंगे। विशेषज्ञों की इस चेतावनी को हाल के कुछ भूकम्पों के इस अनुभव के संदर्भ में भी देखा जाना चाहिए कि परंपरागत तकनीकों से बने कुछ भवन तो मजबूती से खड़े रहे, पर जल्दबाजी में बनाए गए कुछ महंगे निर्माण भरभराकर गिर गए। विशेषकर स्कूल बनाने में हुई लापरवाही बहुत महंगी सिद्ध हो सकती है। अतः स्कूल और अस्पतालों के निर्माण में सुरक्षा को उच्च प्राथमिकता मिलनी चाहिए। कुछ क्षेत्रों विशेषकर हिमालय में भूकम्पों के अधिक जानलेवा होने का एक बड़ा कारण यह है कि जहां पहले से पर्यावरण बहुत उजड़ा हुआ है और बहुत से भूस्खलन सक्रिय हैं, वहां भूकम्प से अधिक क्षति होती है। ऐसी स्थितियां आज हिमालय के बड़े इलाके में नजर आती हैं। हाल के वर्षों में भूस्खलनों से होने वाली भीषण क्षति के समाचार वैसे भी बढ़ते ही जा रहे हैं।

भूस्खलन संबंधी राष्ट्रीय स्तर पर आंकड़े सहजता से हमारे देश में उपलब्ध नहीं हैं, पर बहुत-सी छिटपुट जानकारी विभिन्न पर्वतीय राज्यों में बिखरी हुई है। जरूरत इस बात की है कि राष्ट्रीय

स्तर पर इस आपदा के महत्त्व को समझ कर इससे बचाव के उपायों पर समुचित ध्यान दिया जाए। पर्वतीय क्षेत्रों में भूस्खलन की एक बड़ी वजह तो यह है कि विभिन्न निर्माण कार्यों, विशेषकर बांध निर्माण और खनन के लिए, विस्फोटकों का अंधाधुंध उपयोग किया जाता है। इसको नियंत्रित और नियमित करना जरूरी है। वन-विनाश भी भूस्खलन की आशंका बढ़ने का एक अन्य बड़ा कारण रहा है। भूस्खलन अपने आप में बड़ी आपदा तो है ही, इससे बाढ़ भी उग्र रूप धारण कर लेती है।

बाढ़ और बाढ़ नियंत्रण के बारे में कुछ नए सिरे से सोचने की जरूरत महसूस की जा रही है। 1953-2010 के बीच देश में बाढ़ नियंत्रण पर करीब सवा लाख करोड़ रुपए खर्च किए गए। इसके बावजूद लगभग पांच करोड़ हेक्टेयर भूमि आज बाढ़ प्रभावित है। जबकि राष्ट्रीय बाढ़ आयोग ने वर्ष 1980 में चार करोड़ हेक्टेयर भूमि बाढ़ प्रभावित होने का अनुमान लगाया गया था। अनेक बड़े बहुउद्देश्यीय बांध बाढ़ नियंत्रण के लिए बनाए गए थे। पैंतीस हजार किलोमीटर के नदी तटबंध बनाए गए। इसके बावजूद बाढ़ प्रभावित क्षेत्र बढ़ गया।

सवाल है आखिर ऐसा क्यों हुआ? इसके अनेक कारण बताए जाते हैं। जैसे जल निकासी के रास्तों को अवरुद्ध करते हुए नई बस्तियां बसाना (विशेषकर शहरी क्षेत्रों में), सड़कों, नहरों और रेल मार्गों के निर्माण के समय निकासी की पर्याप्त व्यवस्था न करना, संसाधनों के अभाव या दुरुपयोग के कारण वर्षा से पहले नालों की सफाई जैसे जरूरी कार्य न करना आदि। अलग-अलग जगहों पर ये सभी कारण महत्त्वपूर्ण हो सकते हैं, कहीं कम तो कहीं ज्यादा, पर केवल इनके आधार पर यह नहीं समझा जा सकता कि बाढ़ नियंत्रण पर कई हजार करोड़ रुपए खर्च करने के बाद भी बाढ़ प्रभावित क्षेत्र में इतनी वृद्धि क्यों हुई है। वास्तविकता तो यह है कि बाढ़ का बढ़ता क्षेत्र और इसकी बढ़ती जानलेवा क्षमता को तभी समझा जा सकता है जब बाढ़ नियंत्रण के दो मुख्य उपायों- तटबंधों और बांधों पर खुली बहस द्वारा यह जानने का प्रयास किया जाए कि अनेक स्थानों पर क्या बाढ़ नियंत्रण के इन उपायों ने ही बाढ़ की समस्या को नहीं बढ़ाया है और उसे अधिक जानलेवा बनाया है?

हमारे यहां वर्षा की यह स्वाभाविक प्रवृत्ति है कि यदि उसके जल के संग्रहण और संरक्षण की उचित व्यवस्था नहीं की गई तो यह जल बहुत-सी मिट्टी बहा कर निकट की नदी की ओर वेग से दौड़ेगा और नदी में बाढ़ आ जाएगी। चूंकि अधिकतर जल न एकत्र होगा न धरती में रिसेगा, अतः कुछ समय बाद जल संकट उत्पन्न होना स्वाभाविक है। इन दोनों विपदाओं को कम करने या दूर करने के लिए जीवनदायी जल का अधिकतम संरक्षण और संग्रहण आवश्यक है।

दूसरा महत्त्वपूर्ण कदम यह है कि वर्षा का जो शेष पानी नदी की ओर बह रहा है, उसके अधिकतम संभव हिस्से को तालाबों या पोखरों में एकत्र कर लिया जाए। इस पानी को मोड़ कर सीधे खेतों में भी लाया जा सकता है। तालाब से होने वाले सीपेज का भी उपयोग हो सके, इसकी व्यवस्था हो सकती है। एक तालाब का अतिरिक्त पानी दूसरे में पहुंच सके और इस तरह तालाबों की एक श्रृंखला बन जाए, यह भी कुशलतापूर्वक करना संभव है।

रिवायत से आगे

अनीता यादव

दुनिया मेरे आगे

उस दिन महाविद्यालय में प्रवेश प्रक्रिया के बाद नए सत्र की शुरुआत थी। कक्षा 'हिंदी विशेष' के विद्यार्थियों की थी। कक्षा के दौरान एक दूसरे से परिचय का दौर चल रहा था। विद्यार्थी परिचय के रूप में अपना नाम, रुचियां, जन्म स्थान, जीवन में क्या बनना चाहते हैं और 'हिंदी विशेष' में ही प्रवेश क्यों लिया जैसी बातों के बारे में जानकारियां कक्षा में साझा कर रहे थे। हैरानी की बात यह थी कि विद्यार्थी 'हिंदी विशेष' के थे, इसके बावजूद अधिकतर ने परिचय देने के लिए अंग्रेजी भाषा को चुना। मैं सबको बड़े ध्यान से सुन और उनके हाव-भाव परख रही थी। जो विद्यार्थी हिंदी में बोल रहे थे, उनमें अंग्रेजी भाषा में परिचय देने वालों के मुकाबले एक हिचक थी। अनजाना-सा भय व्याप्त था आवाज में। जबकि अंग्रेजी में परिचय देने वाले विद्यार्थी भले ही गलत अंग्रेजी इस्तेमाल कर रहे थे, लेकिन आत्मविश्वास से लबरेज थे।

कुछ विद्यार्थी हिंदी मिश्रित अंग्रेजी यानी 'हिंग्लिश' का इस्तेमाल कर रहे थे। जबकि मैं उनसे हिंदी में बातचीत कर उनके हिंदी ज्ञान को परखना चाहती थी। साठ बच्चों की कक्षा में एकाध विद्यार्थी ही हिंदी में परिचय देने वाला निकला। मैं सोचने पर मजबूर थी कि हिंदी भाषा के प्रति यह हीन भाव आखिर कहां से आया उनमें? जवाब कठिन नहीं था! हिंदी भाषी समाज में हिंदी को लेकर जो नकारात्मक भाव व्याप्त है, उसी भाव से ग्रस्त वे विद्यार्थी भी थे। दरअसल, हमने अंग्रेजी को भाषा न मान कर उसे बुद्धिमता का पैमाना मान लिया है! आप हिंदी समेत कितनी ही भारतीय भाषाओं के ज्ञाता हो और आपने इन भाषाओं में कितना ही गूढ़ ज्ञान अर्जित किया हो, लेकिन अगर आपको अंग्रेजी नहीं आती तो आपका यह सब ज्ञान बेमानी है। यही ज्ञान अगर अंग्रेजी में प्राप्त किया है तो ऐसा व्यक्ति ही वास्तविक 'इंटेलिजेंट' यानी अपार बुद्धिमान है। यही सोच भारतीय परिवेश में पुख्ता है।

मेरा उद्देश्य यहां किसी भाषा विशेष को कमतर करके आंकना कतई नहीं है। मैं केवल इस ओर इंगित करना चाहती हूं कि हिंदी भाषा को लेकर हमारी सोच, हमारे मानस में इतना संकुचन और कुंठा क्यों है! अन्य देशों की ओर नजर डालें, फिर वह चीन हो, जापान, पाकिस्तान या फ्रांस, इटली या फिर जर्मनी जैसे यूरोपीय देश। पाएंगे कि भाषा को लेकर इन देशों में कोई द्वंद्व नहीं है। इन देशों के लोग भारतीयों की तरह अपनी भाषा का प्रयोग करते हुए हीनता का भाव नहीं महसूस करते। जबकि हम अंग्रेजी शासन से भले स्वतंत्र हो गए हों, लेकिन अंग्रेजी भाषा की मानसिक गुलामी का दौर अभी जारी है। माना कि अंग्रेजी अंतरराष्ट्रीय भाषा है और इसके ज्ञान से हम वैश्विक स्तर पर व्यावसायिक और आर्थिक मजबूती की राह पर आसानी से अग्रसर हो सकते हैं! लेकिन अपनी भाषा के प्रति दोयम दर्जे का व्यवहार निंदनीय है। हिंदी को संविधान में सन 1950 में राजभाषा का दर्जा प्राप्त हुआ। तत्कालीन परिस्थितियों को देखते हुए अंग्रेजी को सह-राजभाषा के रूप में मात्र पंद्रह वर्ष के लिए बनाया गया था। लेकिन विडंबना ही है कि आज भी अंग्रेजी को हम सह राजभाषा के पद से विरत नहीं कर पाए! क्यों नहीं कर पाए? जवाब ढूंढना होगा!

आज हिंदी न केवल राजनीति का शिकार है, बल्कि अपने अस्तित्व की लड़ाई भी लड़ रही है। 'हिंदी दिवस', 'हिंदी पखवाड़ा' या 'हिंदी सप्ताह' मनाना इसी अस्तित्व की लड़ाई के विभिन्न चरण हैं। साल भर में केवल सितंबर माह में हिंदी मानो जीवित हो उठती है। हिंदी दिवस को उत्सव का तरह मनाने के लिए सरकारी, अर्द्ध-सरकारी, गैर-सरकारी- सभी संस्थान अलग से बजट रखते हैं। अंग्रेजीदां बुद्धिजीवी हिंदी दिवस पर हिंदी में भाषण झाड़ कर हिंदी पर उपकार-सा करते हैं। इन दिनों सरकारी कार्यालयों समेत बैंकों तक में 'हिंदी भाषा का प्रयोग करें' की सीख देती पट्टी खिड़की पर सज जाती है।

विश्व हिंदी सम्मेलन का आयोजन भी वैश्विक स्तर पर हिंदी को बचाने की अगली कड़ी है। यानी हिंदी दिवस, सप्ताह या पखवाड़ा या फिर विश्व हिंदी सम्मेलन मात्र औपचारिकता भर हैं। क्या हम नहीं जानते कि किसी भी भाषा का विकास या उसकी अभिवृद्धि उसके व्यावहारिक प्रयोग से ही संभव है? एक दिन या एक सप्ताह या महीना भर कार्यक्रम के रूप में भाषणबाजी से भाषा का अस्तित्व नहीं बच सकता। उदाहरण के तौर पर हमारे सामने हिंदी साहित्य के इतिहास में ब्रज और अवधी हैं जो भक्ति काल में पठन-पाठन और साहित्य लेखन के कारण भाषा थीं। लेकिन बाद में धीरे-धीरे साहित्य लिखा जाना कम हुआ और वे भाषाएं बोली के रूप में सिमट कर रह गईं। इसके विपरीत खड़ी बोली का विकसित रूप हिंदी वर्तमान में हमारे सामने है। यानी एक 'भाषा' सीमित व्यावहारिक प्रयोग के कारण 'बोली' बन उठती है और विस्तृत प्रयोग से 'बोली' भाषा बन जाती है। हिंदी भाषा 'बोली' न बन जाए, इसके लिए हिंदी का अधिकाधिक व्यावहारिक प्रयोग आवश्यक है, न कि औपचारिकता के रूप में दिवस मानना या भारी-भरकम बजट के सम्मेलन करना!

जलते जंगल

सदियों से दुनिया की प्राणवायु माने जाने वाले अमेजन के जंगल आज जल रहे हैं। दुनिया की करीब बीस प्रतिशत कार्बन डाईऑक्साइड को सोखने के कारण पर्यावरणविदों द्वारा इन्हें पृथ्वी के फेफड़े, गुर्दे और एक 'कार्बन सिंक' की संज्ञा दी गई है। ये विश्व के सबसे बड़े वर्षा वन हैं। वहां पेड़ जमीन से पानी खींचते हैं जो भाप बन कर ऊपर जाता है और बाद में बारिश के रूप में बरस जाता है। इसके कारण वहां मौसम हमेशा नम रहता है। दुनिया की सबसे बड़ी नदी अमेजन यहीं से निकलती है। भारत के कुल क्षेत्रफल के करीब दोगुने में ये जंगल फैले हुए हैं जो कुल 55 लाख वर्ग किलोमीटर है। ये दक्षिण अमेरिका के कई देशों पेरू, कोलंबिया, बोलीविया, इक्वाडोर और गुयाना तक फैले हुए हैं। लेकिन इनका सबसे ज्यादा करीब साठ प्रतिशत हिस्सा ब्राजील में है। अगर ये जंगल जल गए तो कार्बन डाईऑक्साइड को सोखने का चक्र बंद हो जाएगा।

वर्षा वनों के इस जंगल में पौधों और जंतुओं की करीब तीस हजार प्रजातियां और करीब 113 आदिम जनजातियां हैं। जितनी जैव विविधता अमेजन में है, उतनी दुनिया में कहीं नहीं है जो आज तबाह हो रही है। जब ये जंगल जल जाएंगे तो ऑक्सीजन की जगह हमें और अधिक कार्बन डाईऑक्साइड मिलेगी जिससे दुनियाभर में प्रदूषण की मात्रा में वृद्धि होगी। ये जंगल मानव शरीर के गुर्दे की तरह पूरे सिस्टम की सफाई करता रहता है। मौसम प्रणाली के नियमन के लिए अमेजन से बड़ा कोई पारिस्थितिकीय तंत्र नहीं है। पहले ही दुनिया जलवायु संकट से जूझ रही है, तापमान बढ़ रहा है, सूखा और बाढ़ बढ़ रहे हैं। अमेजन को हो रहा नुकसान पूरी दुनिया की जलवायु पर बुरा असर डाल सकता है। अगर समय रहते पूरे विश्व ने एकजुट होकर अमेजन की आग को बढ़ने से नहीं रोका तो वहां धुआं गहराता जाएगा और इस काले धुएं में दुनिया के तंदुरुस्त फेफड़े कमजोर और बीमार होकर काल के गाल में समा जाएंगे। उसके बाद आने वाली तबाही के लिए संपूर्ण मानव जाति स्वयं जिम्मेदार होगी।

● *कुलदीप बालियान, कोटा, राजस्थान*

मुआवजा भी

नए मोटर वाहन अधिनियम के तहत यातायात नियमों का पालन न करने पर भारी जुर्माने का प्रावधान रखा गया है। यकीनन सबको इन नियमों का पालन करना चाहिए लेकिन जुर्माना बढ़ाया गया है तो सरकार को सड़कों को भी चकाचक और सुविधाओं से लैस करना चाहिए। सड़कें खराब होने की स्थिति में गाड़ी खराब होने और दुर्घटनाओं के लिए भारी मुआवजा मिलने का भी प्रावधान होना चाहिए।

● *जफर अहमद, रामपुर डेहरू, मधेपुरा*

भाषाई गुलामी

आजादी के बहत्तर साल बाद भी भाषाई तौर पर हम अंग्रेजी और अंग्रेज मानसिकता की गुलामी से नहीं उबर पाए हैं। 'देवनागरी लिपि में हिंदी भारत की राजकीय भाषा होगी' भारतीय संविधान की धारा 343 की इस घोषणा के बाद भी हमारे यहां प्राथमिक व उच्च शिक्षा व्यवस्था से लेकर प्रशासनिक व न्यायिक व्यवस्था तक में अंग्रेजी भाषा का ही वर्चस्व बना रहना बेहद अफसोसनाक है। आज भले ही हम हिंदी दिवस, हिंदी पखवाड़ा व हिंदी सप्ताह जैसे कई रस्म अदायगी वाले कार्यक्रम आयोजित कर लें मगर सच यही है कि हिंदी के प्रति हमारी दकियानूसी सोच ने इसे अंग्रेजी की दासी बना रखा है। हिंदी दिवस पर महज औपचारिकता पूर्ति की जगह सरकार व समाज दोनों को साथ मिलकर हिंदी को उसका समुचित हक दिलाने में मदद करनी चाहिए। हिंदी के व्यापक प्रचार-प्रसार के लिए हम सबको एक साथ मजबूत इच्छाशक्ति और प्रतिबद्धता दिखाने की जरूरत है।

● *अंकित कुमार मिश्रा, अजीम प्रेमजी विवि, बंगलुरु*

किसी भी मुद्दे या लेख पर अपनी राय हमें भेजें। हमारा पता है : ए-8, सेक्टर-7, नोएडा 201301, जिला : गौतमबुद्धनगर, उत्तर प्रदेश

आप चाहें तो अपनी बात ईमेल के जरिए भी हम तक पहुंचा सकते हैं। आइडी है : chaupal.jansatta@expressindia.com

विकल्प की दरकार

प्रधानमंत्री 2022 तक देश को प्लास्टिक मुक्त करने का दावा कर रहे हैं। क्या यह संभव है? एकल इस्तेमाल प्लास्टिक भी तभी हटाया जा सकता है जब हम उसका विकल्प खोज लेंगे। सिर्फ खोजने से काम नहीं चलेगा उसकी लागत को भी नियंत्रण में रखना पड़ेगा। प्लास्टिक हमारी दिनचर्या का अंग बन गया है। इसमें दवाएं रखी जाती हैं, इसमें पानी रखा जाता है। मशीनों के कलपुर्जों के रूप में यह इस्तेमाल होता है। खाने की चीज नरम न हो जाए उसकी पैकिंग में इसे काम में लाया जाता है। सबसे बड़ी बात इस उद्योग में निवेशकों ने करोड़ों रुपए लगाए हैं। लाखों लोगों को रोजगार मिला हुआ है। झट से बंद कर देने का आदेश दे देना उचित नहीं होगा। हमें हर पहलू पर मंथन कर लेना चाहिए क्योंकि यह एक वैश्विक समस्या है। दुनियाभर में लगभग 300 लाख टन प्लास्टिक का उत्पादन होता है। इसमें से 130 लाख टन से ज्यादा प्लास्टिक समुद्र और नदियों में बहा दिया जाता है। सरकार प्रतिबंध जरूर लगाए मगर इसके नफा-नुकसान के बारे में सोच कर।

● *जंग बहादुर सिंह, गोलपहाड़ी, जमशेदपुर*

हिंदी के साथ

हर वर्ष चौदह सितंबर को हम रस्मी तौर पर हिंदी दिवस मनाते हैं पर खेद की बात है कि हिंदी को सही ढंग से बोलने, लिखने और पढ़ने के प्रति हमारा रुझान कम होता जा रहा है। शुद्ध हिंदी लेखन, व्याकरण और हिंदी साहित्य के इतिहास के बारे में नई पीढ़ी को नहीं के बराबर जानकारी है। राज्य सरकार का कामकाज तो हिंदी में हो रहा है पर केंद्र सरकार के विभागीय परिपत्रों में आज भी अंग्रेजी का ही बोलबाला है। हिंदी उत्तर भारत की एक प्रमुख भाषा है जिसे सभी जानते और समझते हैं। यह भाषा सहज-सरल है। हिंदी दिवस मनाना तभी सार्थक हो सकता है जब हम प्राथमिक स्तर से ही बच्चों को सही रूप में हिंदी भाषा सिखा सकें। उच्च शिक्षा भी हिंदी में दी जानी चाहिए।

विदेशों में हिंदी सीखने की ललक बढ़ रही है और वे इसके लिए तरह-तरह के जतन कर रहे हैं पर हमारे देश में ही राष्ट्रभाषा की उपेक्षा होना समझ से परे है। हमारा दायित्व बनता है कि हिंदी भाषा अपनाने के लिए अपने बच्चों को प्रेरित करें। अपने कामकाज में हिंदी को शामिल करें। विज्ञापनों का लेखन हिंदी में हो। अंग्रेजी का ज्ञान प्राप्त करना अच्छा है पर उसे हमारी राष्ट्रभाषा हिंदी पर हावी नहीं होने देना चाहिए।

● *ललित महालकरी, इंदौर, मध्यप्रदेश*

epaper.jansatta.com